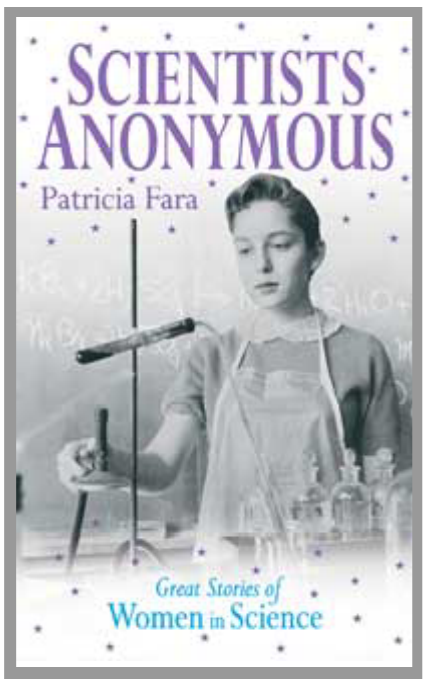

अनाम वैज्ञानिकों की तलाश

डॉ. आशा गोपीनाथन

यह लेख लिखते हुए मुझे एक सेमीनार की बातें याद आ रही हैं। सेमीनार में एक महिला पुरातत्वविद ने एक दिलचस्प व्याख्यान दिया था। उन्होंने रोमन साम्राज्य और भारत के बीच, पहली सदी ईसा पूर्व से 5 इस्वीं के बीच होने वाले व्यापार के बारे में प्रमाण एकत्रित किए थे। मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने अपने शोध कार्य में जेण्डर की दृष्टि से विचार किया है। उन्होंने बताया कि कुछ स्थानों पर खुदाई में वस्त्रों के टुकड़े मिले हैं, जिनसे लगता है कि शायद उन जगहों पर परिवार मौजूद रहे होंगे। मैंने आगे जानना चाहा कि क्या ऐसा कोई प्रमाण है जिससे पता चलता हो कि नावें बनाने वाले, नाविक और व्यापारी सारे के सारे पुरुष ही थे। वे जानना चाहती थीं कि क्या मैं जेण्डर अध्ययन में कार्यरत हूं। मैंने कहा कि नहीं, मैं तो एक वैज्ञानिक हूं जिसकी रुचि दिमाग के कामकाज में है।

बतौर एक वैज्ञानिक मैंने अक्सर अतीत में महिलाओं व अन्य कम नज़र आने वाले अल्पसंख्यकों को देखने का प्रयास किया है। अक्सर ऐसा होता है कि गोरे लोगों की कहानियों में कुछ अश्वेत लोगों का तड़का होता है और कभी कभार एकाध गोरी महिला भी टिका दी जाती है। भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियों के कुछ संग्रहों में एक महिला की जीवनी भी मुश्किल से मिलेगी। मेरे पास एक कॉपी है जिसमें मैं ऐसी हिन्दुस्तानी व अन्य अश्वेत महिलाओं के नाम लिख लेती हूं जिन्होंने विज्ञान में कार्य किया है। ज़ाहिर है विज्ञान की मौजूदा स्थिति को देखते हुए इस कॉपी का भर पाना नामुमकिन ही लगता है।

विज्ञान व टेक्नॉलॉजी के इतिहास के क्षेत्र में काम कर रही महिला शोधकर्ताओं ने इस पर सवाल उठाना शुरू किया है और वे ऐसे बुनियादी प्रश्न पूछ रही हैं कि विज्ञान मतलब क्या, वे कौन लोग हैं जिनका योगदान लिखित इतिहास में दर्ज होता है। इन महिला इतिहासकारों ने हाशिए के लोगों को फिर से इतिहास की किताबों में जगह दिलवाने के प्रयास शुरू किए हैं।

इस संदर्भ में मुझे कैम्ब्रिज के क्लेयर कॉलेज की फेलो पैट्रीशिया फारा की रचनाएं अनोखी व दिलचस्प लगती हैं। अपनी एक पुस्तक *पैण्डोराज़ ब्रीचेस* में फारा

यह तर्क प्रस्तुत करती हैं कि रोशनख्याली के जमाने में महिलाओं ने विज्ञान में कई भूमिकाओं में भागीदारी की थी। ये भूमिकाएं प्रमुख ग्रंथों के अनुवाद से लेकर कई प्रोजेक्ट्स के लिए धन उपलब्ध कराने तक की थीं। हाल ही में प्रकाशित एक अन्य पुस्तक में वे एक कदम और आगे बढ़ी हैं। यह पुस्तक '*साइन्टिस्ट्स एनॉनिमस - ग्रेट स्टोरीज़ ऑफ वीमेन इन साइन्स*' (अनाम वैज्ञानिक - विज्ञान में महिलाओं की दास्तान) मूलतः युवा पाठकों के लिए लिखी गई है। इसमें फारा ने युरोप में विज्ञान में कई महिलाओं के योगदान का वर्णन किया है। कुछ उदाहरण अमरीका के भी हैं। किताब में सत्रहवीं सदी से लेकर वर्तमान तक को समेटा गया है।

पुस्तक में शामिल कहानियों से पता चलता है कि ये महिलाएं कितनी किस्म की गतिविधियों में संलग्न थीं, किस तरह के अवरोधों का सामना करती थीं, किस तरह की रणनीतियां अख्तियार करती थीं। पुस्तक में साफ हो जाता है कि ये महिलाएं प्रयोग करती थीं, अवलोकन रिकॉर्ड करती थीं, सिद्धान्त बनाती थीं, संग्रह तैयार करती थीं, यात्राओं पर निकलती थीं, उपकरण तैयार करती थीं, प्रादर्शों के चित्र बनाती थीं और विदेशी भाषा की किताबों के अनुवाद किया करती थीं। फारा ने इनमें से कुछ नाम खोज निकाले हैं, और उनकी किताब अत्यन्त पठनीय है।

फारा अपनी कहानी की शुरुआत 17वीं सदी से करती हैं क्योंकि उसी समय पहली वैज्ञानिक सभा अस्तित्व में आई थी। लन्दन की रॉयल सोसायटी की स्थापना 1660 में हुई थी। 1550 से 1700 की जिस अवधि को वैज्ञानिक क्रांति का दौर कहा जाता है, उस समय कई सुधारवादियों ने प्रकृति के बारे में जानने की विधियों में परिवर्तन को लेकर अभियान छेड़े थे। इन लोगों ने यह मत व्यक्त किया था कि प्रकृति के बारे में जानने के लिए सदियों पुराने ग्रन्थों के भरोसे रहने की बजाए प्रयोग करके देखना कहीं बेहतर तरीका है। इस नई पद्धति का प्रचार-प्रसार करने के लिए वैज्ञानिक सोसायटियों की स्थापना की गई थी। ये सोसायटियां अनुसंधान व प्रचार-प्रसार को समर्थन देती थीं। मगर कोई महिला इन सोसायटियों की सदस्य नहीं रही। सत्रहवीं सदी में तो उस अर्थ में कोई वैज्ञानिक था ही नहीं, जिस अर्थ में हम आज वैज्ञानिक को देखते हैं। इस शब्द (साइन्टिस्ट) का आविष्कार 1833 में हुआ था। यहां तक कि आइज़ैक न्यूटन को भी वैज्ञानिक नहीं, प्राकृतिक दार्शनिक कहा जाता था। ये प्राकृतिक दार्शनिक प्रयोगशालाओं में बैठकर काम नहीं करते थे, कोई शोध अनुदान नहीं होता था और सबसे विचित्र बात तो यह थी कि ये लोग मानते थे कि अपने काम के द्वारा उन्हें ईश्वर के बारे में और अधिक जानने को मिलेगा।

बहरहाल, हालांकि इन सोसायटियों में महिलाएं वर्जित थीं मगर एक सम्पन्न महिला मार्गरेट केवेण्डिश, जिन्होंने रॉबर्ट बॉयल के शोध कार्य की समीक्षा की थी, ने 1667 में मांग की थी कि उन्हें सोसायटी में आने दिया जाए। जिस दिन वे आईं, उस दिन सोसायटी खचाखच भरी थी क्योंकि कई सदस्य इस विचित्र जीव को देखना चाहते थे। उन्हें यह काम करने के कारण 'मैड मेज' नाम दिया गया था। इसके बाद सदस्यों ने तय किया कि महिलाओं का सोसायटी में प्रवेश औपचारिक रूप से वर्जित होगा। 1904 में हर्था आयर्टन शोध पत्र पढ़ने वाली पहली महिला थीं। उन्होंने रॉयल सोसायटी में अपने शोध पत्र 'दी ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ रिपल मार्क्स' (लहरों के चिन्हों की उत्पत्ति व वृद्धि) का वाचन किया था। यद्यपि आठ सदस्यों ने उनकी सदस्यता हेतु नामांकन किया था मगर उन्हें सिर्फ इस आधार पर अपात्र घोषित कर दिया गया था कि वे विवाहित थीं। इसके पूरे 41 वर्ष बाद ही सोसायटी में प्रथम महिला सदस्य चुनी गई। 1945 में जैव-रसायन शास्त्री मार्जरी स्टीफेंसन और क्रिस्टल वैज्ञानिक कैथलीन लॉन्सडेल, दोनों का चयन हुआ था। मगर आज भी, जब लन्दन की रॉयल सोसायटी में कुल 1200 सदस्य हैं, महिला सदस्यों की

संख्या मात्र 4 प्रतिशत है।

हमारे यहां भी भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी में 3.2 प्रतिशत, भारतीय विज्ञान अकादमी में 4.6 प्रतिशत और राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी में मात्र 4 प्रतिशत महिला सदस्य हैं। अन्य देशों में भी चित्र इससे बहुत अलग नहीं है।

सत्रहवीं सदी के युरोप में कई सारी तत्कालीन दस्तकारी विधाओं - जैसे ग्लास ब्लोईंग, धातु कार्य, चित्रकारी वगैरह का उपयोग प्रयोगों के लिए नए-नए उपकरण बनाने, नक्शे बनाने और रेखाचित्र बनाने में किया जाता था। ये काम पारिवारिक धंधे के रूप में किए जाते थे और कई लड़कियां अपने पिता के साथ शागिर्दी करती थीं। इनमें से कई लड़कियां पूरा कारोबार संभालने भी लगी थीं। खगोल शास्त्र में अमूमन महिलाएं अवलोकन लेने में भागीदार होती थीं या कभी-कभी तो अपनी वेधशाला चलाती भी थीं। मारिया एमार्ट, एलिसाबेथा हेवेलियस, मारिया विंकलमैन, मार्गरेट फ्लेमस्टेड और मारिया क्यूनिट्ज़ ऐसी ही कुछ महिलाएं थीं। उस समय जर्मनी में करीब 14 प्रतिशत खगोल शास्त्री महिलाएं थीं।

तब ऐसा क्यों है कि हमें इन महिलाओं के नाम पता नहीं है? इसके कई कारण हैं। एक कारण तो यह है कि किसी महिला के काम को किसी मशहूर पुरुष के काम के पीछे ओझल कर दिया जाता था। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि स्वयं महिला ने संयुक्त रूप से किए गए काम को अपने पति/भाई/गुरु के नाम से प्रकाशित किया। कुछ मामलों में इन लोगों ने महिला के योगदान को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जब महिला की रचनाओं को सुरक्षित नहीं रखा गया। जैसे बोलोग्ना की लौरा बस्सी का मामला देखिए। उन्होंने 21 वर्ष की उम्र में विश्वविद्यालय में भौतिकी के व्याख्यान देना शुरू किया था। 1776 में वे युरोप की प्रथम महिला प्रोफेसर बनीं। उन्होंने सिर्फ अपने लिए नहीं बल्कि अन्य महिलाओं के लिए भी कई लड़ाइयां लड़ीं। परिणाम यह हुआ कि उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद विश्वविद्यालय ने अपने नियमों में परिवर्तन करके महिलाओं का प्रवेश वर्जित कर दिया। तब कोई अचरज की बात नहीं कि उनका कोई व्याख्यान सुरक्षित नहीं रखा गया। कई मामले ऐसे भी हैं जब जिन कामों को पहले वैज्ञानिक काम माना जाता था, बाद में उन्हें यह मान्यता देना बन्द हो गया। जैसे बीमारियों का इलाज करने, कार्यक्षम ढंग से भोजन उत्पादन करने, रंग और संरक्षक रसायन बनाने वगैरह काम महिलाएं ही करती थीं। यह ज्ञान आगे चलकर औषधि विज्ञान, कृषि, वनस्पति विज्ञान और रसायन शास्त्र जैसे विषयों का रूप ले लेता है।

एक तो महिलाओं को ऐसी शिक्षा ही नहीं मिल पाती थी कि वे विज्ञान में भागीदार हो सकें; दूसरे, पुरुष ऐसे कई नियम कायदे बनाते थे कि महिलाएं वैज्ञानिक कबीले में शामिल न हो सकें। महिलाएं भी इसके लिए कई चतुर उपाय करती थीं। एक उपाय था पुरुष वेष धारण कर लेना। वनस्पति वैज्ञानिक खोजकर्ता जीन बैरेट (1740-1816) ने बोन फॉय नाम से पुरुष वेष धारण करके दुनिया भर की समुद्री यात्राएं की थीं और वानस्पतिक नमूने एकत्रित किए थे। फ्रांसिसी गणितज्ञ सोफी जर्मेन (1776-1831) ने एक पुरुष छात्र का वेष बनाकर विश्वविद्यालय में दाखिला लिया था। वे पुरुष नाम से ही विभिन्न गणितज्ञों से पत्र व्यवहार करती थीं और उन्होंने आधुनिक संख्या सिद्धान्त की नींव रखी थी। अंततः 1816 में उन्होंने अनाम रूप से प्रतिस्पर्धा करते हुए पेरिस विज्ञान अकादमी का एक प्रतिष्ठित पुरस्कार जीता।

तो क्या हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि महिलाएं अपनी कुदरती कमियों और विज्ञान कर्म करने की अक्षमता की वजह से विज्ञान सोसायटियों में नहीं हैं? या क्या ऐसा है कि वे इन सोसायटियों के 'मानकों' को पूरा नहीं कर पातीं या सिर्फ इसलिए कि वे मानकों पर खरी उतरें या न उतरें, उनका चयन नहीं किया जाता? फारा की किताब में जिन नामों का ज़िक्र हुआ है वे स्त्रियों की अक्षमता के सिद्धान्त पर तो सवाल खड़े करने को मजबूर कर देते हैं। जैसे एडा लवलेस (1815-52) जिन्होंने कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग का आविष्कार किया, एमिली डु चेटलेट (1706-49) जिन्होंने न्यूटन की रचनाओं का अनुवाद फ्रेंच में किया और उनकी समीक्षा की, और सैकड़ों अन्य नाम गिनाए जा सकते हैं।

मैं उस सवाल पर लौटती हूं जो मैंने शुरू में रखा था। यदि इस बात को साबित करने के लिए प्रमाण नहीं है कि भारत और रोम के बीच ईसा पूर्व पहली शताब्दि में आने जाने वाले जहाज़ों का निर्माण महिलाओं ने किया था, तो क्या, इस बात को खारिज करने के लिए प्रमाण हैं? एक सृजनात्मक और कल्पनाशील विचारक के हाथों शायद विज्ञान, टेक्नॉलॉजी, गणित, इंजीनियरिंग और वास्तु शास्त्र में भारतीय महिलाओं के लंबे इतिहास के साथ न्याय हो सकेगा। हम उम्मीद करें कि भारत की विज्ञान अकादमियां ऐसे काम को समर्थन देने से पीछे नहीं हटेंगी। ***(स्रोत फीचर्स)***